16

मूल्य का सम्बोध

मूल्य का अध्ययन अनेक विषयों में उसके विभिन्न आयामों के आधार पर अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु रहा है। कॉरनेल (Cornell) विश्वविद्यालय के मूल्य-अध्ययन समूह ने मूल्य के अध्ययन की महत्ता को स्वीकार किया है एवं इसे अनेक विषयों के मिलन-बिन्दु का स्थान माना है। इस सम्बोध के अध्ययन व व्याख्या से विभिन्न विषयों में समन्वयता स्थापित हो सकी। इस दृष्टि से यह सम्बोध विभिन्न विषयों को जोड़ने में सेतु का काम करता है। बौद्धिक दृष्टिकोण से इस सम्बोध की व्यापकता ने इसके अर्थों में भी भिन्नता प्रस्तुत की है। इस सम्बोध के अर्थ के संदर्भ में यह कहना उपयुक्त होगा कि इसके अर्थ में समप्रतिपत्ति नहीं है। अनेक अध्ययनों से यह पता चलता है कि मूल्य को कहीं अभिवृत्ति के रूप में, कहीं प्रयोजन के रूप में, कहीं आदर्श अथवा अच्छाई के रूप में और कहीं व्यवहार के मानदण्ड के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

मूल्य की परिभाषा पूर्व-परिभाषा स्तर पर प्रविष्ट हो जाती है जो कि परिमाण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। समाजशास्त्र में मूल्यों को चार स्तरों पर देखा गया है।

(1) वैकल्पिक क्रिया—वैकल्पिक क्रिया के सम्बन्ध में मूल्य-चयन के अभिमुखन के रूप में—संस्कृति—व्यक्तित्व—सन्दर्भ।

(2) समाज के मानदण्डात्मक व्यवस्था के आधार के रूप में—सामाजिक—सांस्कृतिक—संदर्भ।

(3) मूल्य, सैद्धान्तिक एवं पद्धतिशास्त्रीय अभिमुखन के संदर्भ में—पद्धतिशास्त्रीय संदर्भ।

(4) समाजशास्त्र का मूल्य—व्यावहारिक संदर्भ।

उपर्युक्त आधार पर मूल्यों के विभिन्न अर्थों को स्पष्ट किया जा सकता है। मूल्य में एषणीयता (Desirability) का बोध सर्वोपरि है। अर्थात् मूल्य क्या ठीक है अथवा क्या अच्छा है इसको परिमापित करता है। यह एषणीयता विशिष्ट न होकर साधारण होती है। एषणीयता का साधारण स्तर पर प्रस्तुतिकरण मूल्य कहलाता है जबकि किसी विशिष्ट व्यवहार के प्रतिमान के रूप में इसका अर्थ निकाला जाय तो वह मानदण्ड कहलाया जायेगा। आदमी को ईमानदार होना चाहिये यह मूल्यात्मक कथन है और परीक्षा में नकल नहीं करनी चाहिये, यह मानदण्डात्मक कथन है। मानदण्ड के पीछे मूल्य का आधार होता है। मनुष्य के जीवन के अस्तित्व में मूल्यों का व्यापक महत्त्व है।

(1) समाज में मनुष्य जब क्रिया करता है तो उसके सामने अनेक विकल्प होते हैं। उसके किसी एक विकल्प को स्वीकार करके क्रिया करने का आधार मूल्य ही होता है। इस दृष्टिकोण से मूल्य क्रिया का वह आधार है जो कि नैतिकता अथवा तर्क अथवा सौंदर्य-परक निर्णय के आधार पर लिया जाता है। मूल्यांकन की इस प्रक्रिया में भावना एवं समझ के आधार पर निहित है। समाजशास्त्री यह मानते हैं कि मूल्य संस्कृति के द्वारा स्वीकृत होते हैं और वे संस्थात्मक प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक प्रक्रिया के अंग बन जाते हैं अतः मूल्यों का चयन सांस्कृतिक आधार पर किया जाता है। फिर भी मनुष्य का व्यक्तित्व उसे एक ऐसी विशिष्टता प्रदान करता है कि वह अलग-अलग विकल्पों में से, जो कि संस्कृति के द्वारा स्वीकृत हैं, किसी एक विकल्प का चयन करता है। इस दृष्टिकोण से हालांकि व्यक्ति को विभिन्न विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चयन करने की स्वतंत्रता है फिर भी विभिन्न विकल्प संस्कृति के द्वारा निर्धारित होते हैं। समाजशास्त्र में मनुष्य की मूल्य-निर्माण की प्रक्रिया में योगदान को यथोचित महत्त्व नहीं दिया गया। व्यक्तित्व को भी मूल्यों के आत्मसात्मीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण माना गया है जो कि समाजीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्भव होता है। इच्छा की स्वतंत्रता एवं व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के प्रश्नों को समाजशास्त्रीय अध्ययनों में कम महत्त्व दिया गया है। इस दृष्टिकोण से मूल्य संस्कृति के अंग के रूप में विश्लेषित हुए हैं लेकिन मूल्यों का आन्तरिक विश्लेषण नहीं हुआ है।

(2) समाजशास्त्र में मूल्यों की अपेक्षा मानदण्डों की व्याख्या अधिक हुई है। मानदण्ड हमारे व्यवहार के वे नियम हैं जो कि सांस्कृतिक आधार पर अपेक्षित एवं सही व्यवहार के रूप में परिभाषित होते हैं। मानदण्ड समाज में व्यक्तियों के व्यवहार को नियमित व संचालित करते हैं लेकिन इसके अन्तर्गत समाज से विलग करके मानदण्डों की व्याख्या नहीं होती अतः मानदण्डात्मक व्यवस्था जीवन के प्रतिमानों को निर्धारित करती है एवं समाज में मनुष्य के व्यवहार को इस तरह से संचालित करती है कि मनुष्य की सामाजिक आवश्यकतायें समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों से पूरी हो सकें।

मानदण्डों के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसके स्रोतों से जुड़ा है। प्राणीशास्त्रीय दृष्टिकोण से मानदण्डों का स्रोत मनुष्य की मूल प्रवृत्ति से जोड़ा गया है। इस व्याख्या में कतिपय कठिनाइयाँ हैं क्योंकि मनुष्य की प्रकृति के बारे में निश्चयात्मक रूप से व्याख्या करना कठिन है। अगर मनुष्य की मूल-प्रवृत्ति के संदर्भ में मानदण्डों को देखा जाये तो यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियों को नियंत्रित एवं संचालित करने का कार्य मानदण्ड करते हैं। समाज में भूख, भय, निद्रा एवं यौन इच्छाओं को नियमित करने के लिये मानदण्डात्मक एवं संस्थात्मक तरीके सभी संस्कृतियों में देखे जाते हैं। मनुष्य और पशु में प्रमुख भेद मानदण्डात्मक ही है।

मानदण्डों के उद्गम के दूसरे स्रोत धर्म और नैतिकता में हैं। धर्म में अलौकिक संदर्भ जुड़ा हुआ है जबकि नैतिकता में ऐसा नहीं है। धर्म के संगठनात्मक एवं संस्थात्मक स्वरूप के कारण मानदण्डों का पालन अलौकिक सत्ता की आस्था के कारण सम्भव होता है। नैतिकता अच्छे और बुरे के तार्किक व अनुभव आधार पर निर्मित होती है तथा उसके पालन

में और आस्था में एक खाई का होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से मानदण्डात्मक व्यवस्था समाज की प्रक्रिया के साथ-साथ विकसित हुई है। मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति संगठित रूप में हो सके और बिना किसी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक तनाव के इन आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाये, यह समाज के संचालन एवं व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति के संदर्भ में आवश्यक है। मानदण्ड का आधार अन्ततः मूल्य होते हैं जिनको एक समाज साधारण रूप से स्वीकार करता है। मानदण्ड समाज में संस्थात्मक तरीकों से स्थायित्व प्राप्त करता है और व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया में उनको आत्मसात् करता है। मूल्यों का निर्माण दो स्तरों पर होता है, पहला मनुष्य की चिन्तनशील एवं सृजनात्मक क्षमता, दूसरा, मनुष्य के व्यावहारिक अनुभव के आधार पर। पहली स्थिति में मूल्य मनुष्यों के आदर्शात्मक पक्ष के प्रतिफल हैं और दूसरे में वे मनुष्य के समाज में सामन्जस्य की प्रक्रिया के व्यवहारात्मक पक्ष का प्रतिपादन करते हैं। मूल्यों का संदर्भ एषणीयता है और इस दृष्टिकोण से वे किसी आदर्श अथवा अच्छाई के द्योतक हैं। इसी के माध्यम से मानदण्डों का निर्माण होता है जिनका सम्बन्ध मनुष्य के व्यवहार से है।

मानदण्डों में समय और स्थान की सापेक्षता अधिक स्पष्ट एवं दृष्टव्य है जबकि मूल्यों में चिरन्तरता का बोध होता है। मानदण्डों की सापेक्षता सांस्कृतिक बाहुल्यों को जन्म देती है जिसके अन्तर्गत सामाजिक नियम, प्रथा, रूढ़ियाँ भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं। प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत मानदण्डों को समाज की समन्वित स्थिति को बनाये रखने के लिये आवश्यक माना गया है। अगर मानदण्ड न हों तो समाज में समन्वय व संगठन रखना दुष्कर होगा। व्यवहार के स्तर पर निहित स्वार्थ समूह मानदण्डों का इस तरह से हेर-फेर अथवा जोड़-तोड़ के माध्यम से उपयोग करते हैं कि वे अपने स्वार्थ साधनों को प्राप्त कर सकें और समाज की व्यवस्था भी संचालित होती रहे। समाज का संचालन एक मानदण्डात्मक आवश्यकता है लेकिन मूल्य-संगत नहीं। शोषण अथवा वर्ग-भेद के आधार पर भी समाज का संचालन सम्भव है लेकिन संचालन एवं नियमन स्वयं में एक मूल्य नहीं होता। समाज एकाधिकार अथवा सामन्तवाद अथवा उप-निवेशवाद अथवा पूँजीवाद के आधार पर भी बिना विघटन की स्थिति पैदा किये चल सकता है लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि नैतिकता अथवा क्षुद्र मूल्यों के आधार पर ऐसी व्यवस्था को न्यायिक माना जाये। यह सम्भव है कि एक मानदण्डात्मक व्यवस्था समाज में ऊँचे स्तर का समन्वय प्रदान करे और साथ ही समाज में कुछ लोगों को अतार्किक आधार पर लाभ प्रदान करे। सभी मानदण्डात्मक व्यवस्थायें सांस्कृतिक रूप से सापेक्ष हैं। मूल्यों और मानदण्डों को कई बार एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं फिर भी यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल्य साधारण स्तर पर एषणीयता का विचार है जबकि मानदण्ड विशिष्ट स्थितियों में क्रिया के व्यावहारिक स्वरूप भी एषणीयता में जुड़े हुये हैं। इस दृष्टिकोण से मानदण्ड अधिक विशिष्ट हैं और मूल्य अधिक साधारण। मानदण्ड व्यावहारात्मक हैं और मूल्य आदर्शात्मक। मानदण्ड अधिक मूर्त हैं और मूल्य अधिक अमूर्त। मानदण्ड सांस्कृतिक रूप से सापेक्ष हैं और मूल्यों में सापेक्षता का बोध कम है। मूल्य, विचार के स्तर पर अथवा भावना के स्तर पर जुड़े रहते हैं जबकि मानदण्ड क्रिया के स्तर पर। मानदण्ड संस्थात्मक स्वरूप प्राप्त करते हैं जबकि मूल्य व्यक्ति में आन्तरीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त होते हैं। मूल्य अधिक व्यापक होने के कारण

चयन एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया से अधिक नजदीक से जुड़े हुये हैं।

यहाँ कतिपय प्रश्नों को मूल्य के संदर्भ में देखना समीचीन होगा—

1. मूल्यों का उद्गम

इसके अंतर्गत मूल्य के स्रोत, निर्माण की प्रक्रिया, प्रचार एवं प्रसार के स्तर एवं आयाम, तर्क अथवा अन्तर्ज्ञान से सम्बन्ध, आनुभाविक अथवा अलौकिक अनुभव, लौकिक एवं पारलौकिक आधार महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं।

2. मूल्यों की विरूपता (Heterogeneity)

मूल्यों में अनेक प्रकार की विरूपतायें दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ मूल्यों में सारभौमिक व सार्वकालिक एकरूपता देखी जा सकती है लेकिन मनुष्य के जीवन के इतने आयाम हैं कि उनमें विभिन्नता का होना सम्भव ही नहीं अपितु एक जीवन्त यथार्थ है। इसीलिये मनुष्य अनेक प्रकार के मूल्यों का निर्माण करता है जिनमें परस्पर विरोधाभास भी हो सकता है। मूल्यों की न्यायायिकता तर्क अथवा श्रद्धा दोनों पर सम्भव है। इस संदर्भ में प्रायः आधारभूत धारणाओं के आधार पर मूल्यों की उपयुक्तता को देखा जाता है। कई मूल्य किसी अन्य धारणा से जोड़ करके देखे जाते हैं। मनुष्य की स्वतंत्रता का मूल्य व्यक्ति की जिम्मेदारी के मूल्य से भी जुड़ा हुआ है। स्वायत्तता का मूल्य उत्तरदायित्व के मूल्य से जुड़ा हुआ है। मूल्यों में अतः बहुरूपता का प्रश्न अनेक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है जिसमें प्रथम मूल्यों में विरोधाभास का आधार एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। दूसरे मूल्यों में अन्तःनिर्भरता का प्रश्न आवश्यक रूप से निहित है क्योंकि कई मूल्य दूसरे मूल्यों से इस तरह से जुड़ जाते हैं कि उनको एक-दूसरे के अन्तःसम्बन्ध के आधार पर ही समझा जा सकता है।

3. मूल्यों को स्वीकार व आत्मसात् करने की प्रक्रिया

मूल्य सामाजिक स्तर पर संस्थात्मक तरीकों से स्वीकृत होते हैं और व्यक्ति स्तर पर उन्हें आत्मसात् किया जाता है। सांस्कृतिक स्तर पर मूल्य-व्यवस्था के अंग के रूप में सम्बद्ध हो जाते हैं और उन्हें समाजगत रूप में स्वीकार किया जाता है। वे संस्कृति के आदेशात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं विभिन्न माध्यमों से व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित एवं संचालित करते हैं। संस्थात्मक मूल्यों के आदर्शात्मक पक्ष एवं व्यक्तियों के क्रियात्मक पक्ष में किसी खाई का होना स्वाभाविक है। व्यक्ति व्यवहार के अन्तर्गत स्थिति के अनुरूप व अपने व्यक्तिगत लाभ अथवा हानि को ध्यान में रखकर क्रिया करता है। सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत व्यवहारों के मध्य खाई के आधार पर किसी भी समाज के यथार्थ को समझा जा सकता है। विभिन्न समाजों में किन मूल्यों को महत्त्व दिया जाता है, यह उसकी ऐतिहासिकता से जुड़ा हुआ आयाम है। इसी आधार पर परम्परा व आधुनिकता के मध्य सम्बन्धों का भी विश्लेषण होता है। व्यक्तिगत स्तर पर मूल्यों को आत्मसात् करने की प्रक्रिया मनुष्य के सामाजीकरण की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। मूल्यों का आत्मसातीकरण पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षण संस्थाएँ, पड़ौस, मित्र, समूह, व्यावसायिक समूह, वर्ग, प्रस्थिति, नगरीय अथवा ग्रामीण आवासीय स्थिति पर व्यापक रूप से निर्भर करता है। संचार के साधनों के माध्यम के मूल्यों का प्रचार एवं प्रसार होता है। सरल समुदायों में मौखिक परम्परा के आधार पर मूल्य

लोगों को समान रूप से उपलब्ध हो जायें तो इनकी होड़ समाप्त हो सकती है। दूसरी सम्भावना यह है कि भौतिक साधनों को लक्ष्य के रूप में नहीं व्यक्तिगत उपयोगिता के दृष्टिकोण से महत्त्व दिया जाय और उनकी प्राप्ति स्वयं में एक मूल्य के रूप में अस्वीकृत कर दी जाय। समाज व्यक्तिगत क्षमताओं को अभिव्यक्त करने के वे साधन उपलब्ध करें जिससे व्यक्तिगत स्तर पर क्षमताओं की अभिव्यक्ति सम्भव हो सके तो भौतिक वस्तुएँ स्वयं में एक लक्ष्य न होकर के स्वयं की क्षमताओं की अभिव्यक्ति का साधन हो सकती हैं। भौतिक वस्तुओं पर सार्वजनिक रूप से नियन्त्रण हो और व्यक्तिगत इच्छाओं के आधार पर वितरण, तो सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में व्यापक परिवर्तन आ सकता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अपनी क्षमताओं की पूर्ति के संदर्भ में, भौतिक वस्तुएँ, क्षमताओं को प्राप्त करने के साधन के रूप में अगर समाज के मूल्यों के रूप में स्वीकृत हो जायें तो एक नई सामाजिक संरचना की सम्भावना का जन्म होता है। इस सामाजिक संरचना में साम्यवाद व स्वतन्त्रता का प्रजातंत्रीय आधार दोनों का वांछनीय व तार्किक सम्बन्ध हो सकता है।

(3) मूल्य, सैद्धान्तिक एवं पद्धतिशास्त्रीय अभिमुखन के संदर्भ में—पद्धतिशास्त्रीय संदर्भ

वर्कमियेस्टर ने मूल्य के प्रश्नों को तीन स्वरूपों में देखा है—'समाज विज्ञानों का मूल्य', दूसरा, 'समाज विज्ञानों में मूल्य', 'तीसरा', 'समाज विज्ञानों के लिये मूल्य'। समाज विज्ञान का मूल्य समाज विज्ञानों की उपयोगिता से जुड़ा हुआ है और यह उसका व्यावहारिक आधार है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से समाजशास्त्र का क्या उपयोग हो सकता है यह प्रश्न इसके अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है। दूसरा प्रश्न मूल्यों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किस तरह हो इससे जुड़ा हुआ है। इस दृष्टिकोण से मूल्य सामाजिक तथ्य के रूप में प्रस्तुत होते हैं जिनका समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा सकता है। तीसरा प्रश्न पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से समाजशास्त्र में महत्त्वपूर्ण रहा है। यह प्रश्न कई ऐसे मुद्दों को उठाता है जिनका सम्बन्ध अध्ययन की प्रक्रिया से है। मूल्य-तटस्थ रूप से समाजशास्त्र में अध्ययन हो इस बात को वैज्ञानिक समाजशास्त्री महत्त्व देता है। वैज्ञानिक समाजशास्त्री वस्तु-परकता के मूल्य को भी स्वीकार करता है। वस्तु-परकता का अर्थ यह है कि अध्ययनकर्ता विषय और वस्तु में स्पष्ट भेद करें जिससे कि अध्ययनकर्ता के स्वयं के विचार अथवा विश्वास अध्ययन की प्रक्रिया को प्रभावित न करें। मनुष्य-मनुष्य का अध्ययन करता है अतः वह वस्तुपरकता, जो कि भौतिक विज्ञान में सम्भव हो सकती है, सामाजिक विज्ञानों में दुष्कर प्रतीत होती है। व्यक्ति की अपनी संवेदनशीलता, भावना, उसे अपने अध्ययन की प्रक्रिया में अन्य व्यक्ति को वस्तु के रूप देखने में अड़चन पैदा करती है। वैज्ञानिक रूपावली (Paradigm) इस बात को महत्त्व देती है कि अध्ययनकर्ता प्रघटनाओं का विश्लेषण करे लेकिन विश्लेषण के आधार पर किसी प्रकार के सुझाव न दें। उनकी यह मान्यता है कि विश्लेषण करना और तथ्यों के आधार पर व्याख्या करना वैज्ञानिक रूपावली का प्रमुख सिद्धांत है और सुझाव देने से व्यक्ति विशेष प्रकार के मूल्यों से बंध जाता है।

मूल्य सामाजीकरण की प्रक्रिया में आत्मसात् किये जाते हैं। व्यक्ति अपने बाल्यकाल से ही समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से समाज से इस तरह बंध जाता है कि वह इस प्रक्रिया में अनेक प्रकार की पसंद, नापसंद, पूर्वाग्रह इत्यादि से ग्रसित रहता है। यह पसंद नापसन्द के मूल्य व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं और उन पर अध्ययन की प्रक्रिया के समय किसी प्रकार के परित्याग की अपेक्षा पूर्ण-रूपेण सम्भव नहीं हो सकती। अध्ययन की प्रक्रिया में व्यक्तिगत मूल्य-चेतन अथवा अचेतन रूप से समाविष्ट हो जाते हैं और वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन के निष्कर्षों को प्रभावित करते हैं। विज्ञान स्वयं में कुछ पूर्ण-धारणायें बनाता है। इस दृष्टिकोण से विज्ञान किसी मूल्य-पुंज से जुड़ा हुआ है। विज्ञान प्रकृति की समरूपता को स्वीकार करता है जिसका यह अर्थ हुआ कि यदि स्थितियाँ एक-सी हों तो एक से ही परिणाम निकलेंगे। विज्ञान सत्य के वस्तुपरक मूल्य को स्वीकार करता है जिसका अर्थ यह हुआ कि यह विश्व व्यक्ति विश्वास, इच्छाओं एवं आशाओं से युक्त है, उसका अपना स्वयं का अस्तित्व है। साथ ही विज्ञान आनुभाविक प्रमाण को भी स्वीकार करता है अर्थात् प्रमाण का आधार इन्द्रियों के माध्यम से यथार्थ के दिग्दर्शन से जुड़ा हुआ है। मर्टन के अनुसार विज्ञान की मूल्य-व्यवस्था के निम्नांकित तत्त्व हैं—

1. सार्वभौमिकता (Universalism)
2. व्यवस्थित शंकालुता (Organized scepticism)
3. सामुदायिकता (Communality)
4. नैतिक तटस्थता (Ethical neutrality)
5. रुचि-विहीनता (Disinterestedness)

समाजशास्त्री यह मानते हैं कि अनुसंधान की प्रक्रिया में मूल्य अनेक रूप से अध्ययन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। अध्ययन के लिये चयन की गई समस्या का चयन हमारे मूल्यों के आधार पर किया जाता है। अनेक बार किसी समस्या का चयन इसलिये करते हैं कि वह हमारे व्यक्तिगत दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है अथवा सामाजिक यथार्थ के उस पक्ष के प्रति हम अधिक संवेदनशील हैं अथवा व्यावसायिक दृष्टिकोण से उस तरह की समस्याओं का चयन करना अधिक महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक माना जाता है। सांस्कृतिक अथवा सामाजिक दृष्टिकोण से अनेक समस्यायें किसी विशेष काल में अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। समाजशास्त्री अपनी समस्या का चयन उस आधार पर भी करता है।

इसके अतिरिक्त जब हम किसी भी समस्या का अध्ययन करते हैं तो हमारे देखने की प्रक्रिया स्वयं में हमारे व्यक्तिगत मूल्यों से प्रभावित हो जाती है। देखना मात्र देखना नहीं होता अपितु हर देखने में एक अर्थ भी होता है। व्यक्तियों की देखने की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है और यह उनके व्यक्तित्व के आयामों व मूल्य पुंजों से प्रभावित होती है। अध्ययन की प्रक्रिया में से हमारी इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं भय को दूर रखना दुष्कर कार्य है। हमें जो व्यवस्थित, बौद्धिक स्वरूप के रूप में अध्ययन प्राप्त होता है वह अध्ययनकर्ता को शिक्षा व समाज में उसके स्थान के आधार पर निर्मित कार्य हैं। वेबर के अनुसार पूर्णरूपेण वस्तुपरक वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं है। उनके अनुसार अध्ययन की प्रक्रिया में मूल्य दो स्तरों पर प्रभाव डालते हैं। एक ओर तो वे हमारी विषय-वस्तु का निर्धारण करते हैं और दूसरी ओर

किसी विशिष्ट घटना की व्याख्या को। किसी भी प्रघटना की अनेक व्याख्यायें हो सकती हैं और हम किसको महत्त्व देते हैं यह हमारी व्यक्तिगत मान्यताओं पर निर्भर करता है। प्रशिक्षण की प्रक्रिया में यथार्थ का मूल्यांकन निहित है। विषयपरक समाज का मूल्यांकन इस बात का द्योतक है कि ज्ञान में व्यक्तिगत तत्त्व निहित हैं। भाषा शास्त्रीय दृष्टिकोण से यह कहना समीचीन होगा कि भाषा शब्द एवं व्याकरण की व्यवस्था हमें एक विशेष रूप से विश्लेषण एवं प्रत्यक्षण के लिये बाध्य करती है। यही नहीं अपितु बौद्धिक रूप से अगर कोई विचारधारा से जुड़ा है तो स्वाभाविक रूप से उसकी व्याख्या उस विचारधारा से प्रभावित होगी। इसके अतिरिक्त समाजशास्त्री की किसी विशिष्ट उपागम से कटिबद्धता होने पर वह उपागम, अध्ययन को प्रभावित करता है। व्यक्ति को एक पूर्ण मनुष्य के रूप में समझा जाना चाहिये। व्यक्ति को समाजशास्त्री के रूप में अलग करके देखना सम्भव नहीं होगा। अनेक समाजशास्त्री यह मानते हैं कि मूल्य का प्रश्न तत्कालीन विज्ञानवाद की सांस्कृतिक रूप से महत्ता के कारण उत्पन्न हुआ है। वर्तमान समय में विज्ञानवाद के विरोध में मानविकी संस्कृति का प्रादुर्भाव हो रहा है। विज्ञानवाद से अनेक प्रकार के ऐसे प्रभाव दृष्टिगोचर हुए हैं जो कि व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर अप्रकार्यात्मक सिद्ध हुए हैं। विज्ञानवाद ने व्यक्तिगत सम्बन्धों में ह्रास पैदा किया है; अत्यधिक उपभोग की प्रवृत्ति को जन्म दिया है, वातावरण को दूषित किया है और विश्व-विनाश की सम्भावना को प्रबल बनाया है। इन कारणों से विज्ञानवाद का विरोध हुआ है और संवेदनशील, समानुभूति एवं विषय-परकता के आधार पर अध्ययन करने की प्रक्रिया को सबल बनाने का प्रयास किया गया है।

अतः पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से मूल्य का प्रश्न समाजशास्त्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। मूल्य तटस्थ दृष्टिकोण से किये गये अध्ययन एवं वस्तुपरकता के आधार पर किये गये अनुसंधान दोनों की आलोचना हुई है। समाजशास्त्र में अनेक नये उपागम विगत दो दशकों में उत्पन्न हुए हैं। इन उपागमों ने परम्परागत समाजशास्त्र का विरोध किया है और एथनोमेथोडोलोजी (Ethnomethodology) प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद (Symbolic Interactionism) एवं प्रघटनाशास्त्र (Phenomenology) जैसे उपागमों के माध्यमों से सामाजिक यथार्थ को समझने के नये आयाम प्रस्तुत किये हैं। मूल्य के प्रश्न के सामाजिक यथार्थ (Social Reality) की प्रकृति के प्रश्न को भी पुनः स्थापित किया है। अनेक समाजशास्त्री सामाजिक व प्राकृतिक यथार्थ में अन्तर करते हैं अतः दोनों के अध्ययन में भेद करने के पक्षधर हैं। सामाजिक यथार्थ मनुष्य के द्वारा निर्मित हैं जबकि भौतिक यथार्थ प्रदत्त हैं। मनुष्य की सामाजिक स्थिति व उसका समाजीकरण यथार्थ के प्रत्यक्षण को प्रभावित करता है जबकि यह प्रभाव भौतिक यथार्थ के अध्ययन में दृष्टिगोचर नहीं होता। यथार्थ और मूल्य के प्रश्नों ने समाजशास्त्र की प्रकृति एवं अध्ययन पद्धति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की दिशा प्रस्तुत की है। समाजशास्त्र में अनेक असन्तोष उभरे जिनको नये वैचारिक आधारों पर दूर करने का सतत प्रयास जारी है। समाजशास्त्र में आन्तरिक क्रांति सामाजिक यथार्थ की प्रकृति एवं मूल्य के प्रश्न से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

(4) समाजशास्त्र का मूल्य : व्यावहारिक संदर्भ

समाजशास्त्र का क्या उपयोग हो सकता है यह प्रश्न एक स्तर पर उसकी व्यावहारिक

उपादेयता से जुड़ा हुआ है। समाजशास्त्र परम्परागत रूप से 'क्या है' का अध्ययन करता रहा है और न कि 'क्या होना चाहिये' का। लिंड (Lynd) ने 'ज्ञान किसलिए' (Knowledge for What) का प्रश्न उठाया था। किसी एक स्तर पर यह कहा जाता है कि ज्ञान का निर्माण ज्ञान के लिये एक बौद्धिक संतुष्टि प्रदान करता है। यह सन्तुष्टि व्यक्तिगत स्तर पर सम्पन्न होती है साथ ही व्यावसायिक स्तर पर सामूहिक सन्तुष्टि सम्पन्न होती है। इस सन्तुष्टि में व्यावहारिक उपयोगिता का तत्त्व सन्निहित नहीं है। 'ज्ञान-ज्ञान' के लिए की उक्ति के आधार पर व्यक्ति बौद्धिक स्तर पर सन्तुष्टि का अनुभव करता है।

दूसरे स्तर पर समाजशास्त्रीय ज्ञान के आधार पर सामाजिक व्यवस्था को ठीक करने का दृष्टिकोण है और साथ ही विशिष्ट सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिये उपाय प्रस्तुत करने का दृष्टिकोण भी है। समाजशास्त्री सामाजिक यथार्थ को व्यवस्थित रूप से समझने का प्रयास करता है। वह सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण के सम्बन्ध को स्थापित करने का भी प्रयास करता है। समाज में होने वाली घटनाओं के लिये कुछ सिद्धांतकार सामाजिक संरचना अथवा सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत कारणों को ढूँढते हैं तो कुछ अन्य समाजशास्त्री व्यक्ति के व्यवहार की प्रक्रिया और समाज से उसके सम्बन्ध के आधार पर घटनाओं व समस्याओं को समझाते हैं। कतिपय समाजशास्त्रियों के अनुसार मानवीय व्यवहार संरचनाओं के प्रभाव का प्रतिफल है। अतः सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिये अथवा सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिये सामाजिक परिवर्तन आवश्यक मानते हैं।

मानविकी समाजशास्त्र (Humanistic Sociology) के अन्तर्गत इस बात पर महत्त्व दिया गया है कि सामाजिक प्रघटना को समझने के लिये विषयपरकता एवं संवेदनशीलता को महत्त्व देना चाहिये एवं सामाजिक समस्या के निराकरण के लिये समीचीन हल एवं उपाय प्रस्तुत करने चाहिये। यही दृष्टिकोण समाजशास्त्र के उपयोग से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। समाज में निरन्तर भाँति-भाँति की समस्यायें उत्पन्न होती रहती हैं। राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व तकनीकी आधारों पर समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों से समाज में अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हुई हैं। कुछ समस्यायें इस प्रकार की हैं कि उनका सम्बन्ध पूरी व्यवस्था से है एवं कुछ ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध समाज-मूलक समस्या के रूप में जीवन के किसी विशिष्ट पक्ष से है। विचलन व्यवहार के सम्बन्ध में समाजशास्त्र में अनेक आनुभाविक एवं सैद्धान्तिक अध्ययन हुए हैं। अपराध, नशावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेकारी, भिक्षावृत्ति जैसी समस्याओं पर अनेक अध्ययन किये गये। सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के भी अनेक अध्ययन जुड़े हुए हैं लेकिन समाजशास्त्रियों ने व्यापक स्तर पर वैकल्पिक समाज व्यवस्था (Alternative Social System) के निर्माण की दिशा में बहुत कम काम किया है। मानविकी समाजशास्त्र एवं उग्रवादी समाजशास्त्र (Radical Sociology) ने समाजशास्त्र के द्वारा प्राप्त ज्ञान के उपयोग के पक्ष में सक्रिय भूमिका निभायी है। उग्रवादी समाजशास्त्रियों ने 'ज्ञान किसलिये' प्रश्न को रूपांतरित करके 'ज्ञान किसके लिये' प्रश्न को उठाया। इस प्रश्न के अन्तर्गत इस बात पर बल दिया गया है कि

समाजशास्त्रीय ज्ञान का उपयोग शोषित, अभावग्रस्त एवं निर्धन लोगों के लिये करना चाहिये न कि सत्ताधारी अथवा धनवान लोगों के लिये। समाजशास्त्री का दायित्व निम्न वर्ग के प्रति होना चाहिये। उपवादी समाजशास्त्र ऐसे समाजशास्त्रियों के अध्ययन का विरोध करता है जो अपने निष्कर्षों एवं सुझावों के आधार पर मिल के मालिकों को अधिक लाभ दिलाने के तरीके सुझाता है अथवा संचार के साधनों के माध्यम से लोगों में सत्ताधारी पक्ष की मिथ्यात्मक लेकिन सकारात्मक छवि प्रस्तुत करने के तरीकों का निर्माण करता है। यह समाजशास्त्र उन सब समाजशास्त्रीय रचनाओं की आलोचना करता है जो कि मात्र शब्द जालों के माध्यम से अथवा वाक्य-विन्यास की शैली के आधार पर समाजशास्त्र को प्रस्थापित करना चाहता है। शब्द-जाल अथवा वाक्य-विन्यास बौद्धिकता के पर्याय नहीं हो सकते। इस तरह की बौद्धिक क्रियायें मानसिक थोथेपन की अथवा ज्ञानात्मक विलासिता का रूप ही हो सकती हैं।

सी. राइट मिल्स (C. Wright Mills) ने मानविकी परम्परा के निर्माण पर बल दिया है और समाजशास्त्र में सुधार की प्रवृत्ति के ह्रास पर चिन्ता व्यक्त की है। चिन्तनशील समाजशास्त्र (Reflexive Sociology) जिसके प्रवर्तक गोल्डनर (Gouldner) हैं, उन्होंने समाजशास्त्री की भूमिका एवं उसके व्यक्तित्व के परस्पर नैतिक सम्बन्धों की व्याख्या की है। उनके अनुसार समाजशास्त्री में कुछ विशिष्ट नैतिक गुण होने चाहिये। वे उस तरह के समाजशास्त्रियों की निन्दा करते हैं जो कि गरीबी का अध्ययन करके उससे प्राप्त धन को अपने पास रख लेते हैं और उन गरीबों को जिनके अध्ययन के द्वारा उस पुस्तक का निर्माण हुआ कुछ भी नहीं देते। चिन्तनशील समाजशास्त्र इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्री में बुद्धि व कौशल तो होना चाहिये पर साथ में साहस व निर्भीकता के गुण भी आवश्यक हैं। समाजशास्त्री का मूल्यांकन एक पूर्ण व्यक्ति के रूप में होना चाहिये न कि विभाजित भूमिकाओं के आधार पर। हम यह नहीं कह सकते हैं कि हम जो पढ़ाते हैं और जिन विचारों का प्रतिपादन अपने लेखनियों में करते हैं वह अलग है और जिस तरह का जीवनयापन करते हैं वह अलग। गोल्डनर ने यह कहा कि समाजशास्त्री के विचारों व क्रियाओं के मध्य कोई खाई नहीं होनी चाहिये। समाजशास्त्री का मूल्यांकन दैनिक जीवन में उसके द्वारा सम्पन्न कार्य व क्रियाओं के आधार पर होना चाहिये। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्री की भूमिका एक व्यावसायिक व्यक्ति एवं मनुष्य के रूप में अभिन्न है और उनको अलग-अलग रूप से नहीं देखा जा सकता। समाजशास्त्र ओरों के लिये ही नहीं स्वयं के लिये भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि चिन्तनशील समाजशास्त्र के अनुसार समाजशास्त्र का महत्त्व समाज के अध्ययन के साथ-साथ मूल्यों की प्रस्थापना से भी है। मूल्यों की प्रस्थापना सर्वप्रथम व्यक्तिगत स्तर पर स्वयं से शुरू होती है। बर्जर (Berger) ने इसी संदर्भ में समाजशास्त्र को चेतना का एक स्वरूप माना है। उनके अनुसार समाजशास्त्र का प्रमुख कार्य मुखौटों को हटाना है और समाज में छिपी हुई संरचना को प्रगट करना है। समाजशास्त्री में मानसिक जिज्ञासा व संवेदनशीलता के गुणों का होना भी आवश्यक है।

अतः समाजशास्त्र का महत्त्व केवल बौद्धिक स्तर पर ही नहीं बल्कि क्रिया के स्तर पर भी स्वीकार किया गया है। साथ ही चरित्र निर्माण के गुणों के महत्त्व को ओर के लिये नहीं लेकिन स्व के स्तर पर अधिक सार्थक माना गया है। ऐसे मूल्यों ने समाजशास्त्र की बौद्धिक परम्परा को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। यह प्रभाव सिद्धांत एवं पद्धति दोनों पर ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। अतः मूल्य की अवधारणा समाजशास्त्र में अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। मूल्य के आधार पर समाज की संरचना का निर्माण होता है और मूल्य के आधार पर समाजशास्त्र की आन्तरिक-सैद्धांतिक एवं पद्धतिशास्त्रीय आयाम निर्मित होते हैं। ज्ञान की शाखा के रूप में समाजशास्त्र मूल्य सम्बन्धी प्रश्न को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखता है जिसके अन्तर्गत विषय का आन्तरिक पक्ष व समाज का बाह्य पक्ष दोनों ही अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं।

◆ ◆ ◆